Gurukul International Multidisciplinary Research Journal (GIMRJ)
with International Impact Factor 8.357
Peer Reviewed Journal
https://doi.org/10.69758/GIMRJ/2601S01V14P036

e-ISSN No. 2394-8426
Special Issue on Humanities And
Indian Knowledge System Feb'26
Issue–I(I), Volume–XIV

भारतीय ज्ञान परंपरा और दलित मुक्ति का वैचारिक संघर्ष

Dr.Lokesh B. Nandeshwar
Aniket College of Social Work,
Wardha. Mo.: 8483898020

सारांश-
भारतीय ज्ञान परंपरा विश्व की प्राचीनतम और समृद्ध बौद्धिक परंपराओं में से एक मानी जाती है। इसमें वेद, उपनिषद, बौद्धजैन दर्शन-, भक्ति साहित्य, लोक परंपराएँ तथा आधुनिक विचारधाराएँ सम्मिलित हैं। किंतु इस व्यापक ज्ञान परंपरा का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह भी रहा है कि इसे लंबे समय तक जातिआधारित सामाजिक -व्यवस्था के संरक्षण और औचित्य के लिए प्रयुक्त किया गया। विशेष रूप से ब्राह्मणवादी ग्रंथों और व्याख्याओं ने वर्णभेद को धार्मिक और दार्शनिक आधार प्रदान किया-व्यवस्था और जाति-, जिससे दलित समुदायों को ज्ञान, शिक्षा और सांस्कृतिक अधिकारों से वंचित रखा गया। इस संदर्भ में दलित मुक्ति का संघर्ष केवल सामाजिक या राजनीतिक ही नहीं, बल्कि मूलतः वैचारिक और ज्ञानात्मक भी रहा है।

दलित समाज की ऐतिहासिक स्थिति को समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम भारतीय ज्ञान परंपरा के भीतर निहित सत्ता संरचनाओं को पहचानें। मनुस्मृति जैसे धर्मशास्त्रीय ग्रंथों ने शूद्रों और अतिशूद्रों को शिक्षा, वेदाध्ययन और सामाजिक उन्नति से वंचित किया। ज्ञान को सवर्णों की बपौती बना दिया गया, जिससे समाज में बौद्धिक और सांस्कृतिक असमानता स्थायी रूप से स्थापित हो गई। इस व्यवस्था ने दलितों को न केवल आर्थिक और सामाजिक रूप से हाशिये पर रखा, बल्कि उनके अनुभवों और जीवन दृष्टि को भी-"अज्ञान" के रूप में खारिज किया। इसके विपरीत, दलित चिंतन ने ज्ञान की एक वैकल्पिक परंपरा विकसित की, जो श्रम, अनुभव और मानवीय गरिमा पर आधारित थी। बुद्ध का दर्शन, भक्ति आंदोलन के संत कबीर और रैदास की वाणी, तथा फुले और आंबेडकर का आधुनिक चिंतन इसी प्रतिरोधी ज्ञान परंपरा के महत्वपूर्ण स्तंभ हैं। इन विचारकों ने न केवल जातिव्यवस्था की आलोचना की-, बल्कि यह भी दिखाया कि सच्चा ज्ञान वही है जो मनुष्य को स्वतंत्र, समान और सम्मानित जीवन की ओर ले जाए। डॉआंबेडकर ने विशेष रूप से यह स्पष्ट किया कि ब्राह्म .णवादी ज्ञान परंपरा सामाजिक अन्याय को बनाए रखने का एक उपकरण रही है, और दलित मुक्ति के लिए उसका पुनर्पाठ और पुनर्निर्माण अनिवार्य है।

इस प्रकार भारतीय ज्ञान परंपरा और दलित मुक्ति के बीच संबंध केवल विरोध का नहीं, बल्कि पुनर्संरचना का भी है। दलित आंदोलन ने ज्ञान की अवधारणा को लोकतांत्रिक बनाने का प्रयास किया, जहाँ सभी समुदायों के अनुभव, इतिहास और संस्कृति को मान्यता मिले। यह संघर्ष इस प्रश्न के इर्द गिर्द घूमता है कि-"कौन सा ज्ञान वैध है और किसका अनुभव इतिहास में दर्ज होगा?" दलित विमर्श ने इस एकाधिकार को तोड़ते हुए बहुजन समाज की दृष्टि को भारतीय बौद्धिक परंपरा के केंद्र में लाने का प्रयास किया है।

समावेशी दृष्टि से पुनर्परिभाषित -निष्कर्षतः यह रेखांकित करता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा को दलित करना समय की आवश्यकता है। जब तक ज्ञान की संरचनाएँ सामाजिक समानता और न्याय के मूल्यों से नहीं जुड़ेंगी, तब तक दलित मुक्ति अधूरी रहेगी। भारतीय समाज की सच्ची बौद्धिक और नैतिक उन्नति तभी संभव है जब ज्ञान परंपरा सभी के लिए समान रूप से सुलभ और सम्मानजनक बने।

मुख्य शब्दभारतीय ज्ञान परंपरा -, दलित विमर्श, ब्राह्मणवाद, सामाजिक न्याय, आंबेडकर, बहुजन दृष्टि, ज्ञान और सत्ता

परिचय-
भारतीय ज्ञान परंपरा को सामान्यतः वेद, उपनिषद, स्मृति, पुराण, दर्शन, भक्ति साहित्य और लोक परंपराओं के रूप में देखा जाता है, परंतु यह परंपरा केवल आध्यात्मिक और दार्शनिक नहीं रही, बल्कि सामाजिक सत्ता और वर्चस्व की संरचना भी रही है। डॉ भीमराव आंबेडकर ने स्पष्ट रूप से कहा था कि ."भारत में ज्ञान का इतिहास वास्तव में सत्ता का इतिहास है"[i] । ब्राह्मणवादी ज्ञानव्यवस्था ने ज्ञान को जन्म आधारित विशेषाधिकार बनाकर -सामाजिक असमानता को वैधता प्रदान की। मनुस्मृति में शूद्र के लिए केवल सेवा को धर्म बताया गया है 10 मनुस्मृति).121) और वेद सुनने पर दंड का विधान किया गया है 4 मनुस्मृति).99), जिससे यह स्पष्ट होता है कि ज्ञान को दलित और श्रमिक वर्गों से सुनियोजित रूप से दूर रखा गया।

आंबेडकर ने इस व् .डॉयवस्था को "graded inequality" कहा और लिखा कि "हिंदू सामाजिक संरचना धार्मिक और दार्शनिक ग्रंथों द्वारा असमानता को पवित्र बनाती है।"[ii] इस व्यवस्था में दलितों के श्रम, अनुभव और जीवनदृष्टि को ज्ञान का दर्जा नहीं दिया गया। गैल ऑम्वेट के अनुसार-, "ब्राह्मणवादी ज्ञान प्रणालियों ने उत्पादक वर्गों को बौद्धिक और सांस्कृतिक वैधता से वंचित रखा"[iii]। इस तरह भारतीय ज्ञान परंपरा का एक

बड़ा हिस्सा सामाजिक प्रभुत्व को बनाए रखने का उपकरण बन गया। इसके विरुद्ध दलित समाज ने अपनी वैकल्पिक ज्ञान परंपरा विकसित की, जिसकी जड़ें बुद्ध के दर्शन से लेकर भक्ति आंदोलन और आधुनिक दलित चिंतन तक फैली हुई हैं। बुद्ध ने जाति आधारित बौद्धिक वर्चस्व को अस्वीकार करते हुए कर्म और करुणा को मनुष्य का मूल्य बताया। आंबेडकर ने लिखा कि "बौद्ध धर्म पुरोहित वर्ग के ज्ञानएकाधिकार के विरुद्ध विद्रोह - था"[iv] । भक्ति आंदोलन में कबीर और रैदास ने जाति और ज्ञान के संबंध को तोड़ते हुए यह दिखाया कि सच्चा ज्ञान मनुष्य की आत्मा और कर्म से जुड़ा होता है, न कि जन्म से।

ज्योतिबा फुले ने ब्राह्मणवादी इतिहास और ज्ञान परंपरा की कठोर आलोचना करते हुए लिखा कि "तथाकथित आर्य संस्कृति शूद्रों और अतिशूद्रों की दासता पर आधारित थी"[v]। डॉआंबेडकर ने भी यह स्पष्ट . किया कि"वेद, शास्त्र और स्मृतियाँ सामाजिक असमानता को वैचारिक आधार प्रदान करती हैं"[vi]। इस प्रकार दलित मुक्ति आंदोलन केवल सामाजिक और राजनीतिक नहीं बल्कि गहरे स्तर पर एक ज्ञानात्मक क्रांति है, जो यह प्रश्न उठाता है कि ज्ञान किसका है और किसके अनुभव को मान्यता दी जाएगी। दलित साहित्य और आत्मकथाएँ इसी वैकल्पिक ज्ञान परंपरा का आधुनिक रूप हैं। शरणकुमार लिंबाले के अनुसार, "दलित साहित्य केवल साहित्य नहीं, बल्कि ब्राह्मणवादी विचारधारा के विरुद्ध एक प्रतिरोधी ज्ञान प्रणाली है"[vii] । यह साहित्य दलित जीवन की वास्तविकताओं, पीड़ा और संघर्ष को ज्ञान के केंद्र में लाता है और पारंपरिक भारतीय बौद्धिक ढांचे को चुनौती देता है।

आज जब भारतीय ज्ञान परंपरा के पुनरुत्थान की बात की जाती है, तब यह अनिवार्य हो जाता है कि उसमें दलित और बहुजन समाज के अनुभवों को केंद्रीय स्थान दिया जाए। यदि ऐसा नहीं होता, तो यह पुनरुत्थान केवल पुराने ब्राह्मणवादी वर्चस्व की नई स्थापना बनकर रह जाएगा। इस प्रकार भारतीय ज्ञान परंपरा और दलित मुक्ति के बीच का संबंध संघर्ष, पुनर्पाठ और पुनर्निर्माण का है, जो भारत की लोकतांत्रिक और समावेशी भविष्य के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

शोध विधि -

प्रस्तुत अध्ययन "भारतीय ज्ञान परंपरा और दलित मुक्ति का वैचारिक संघर्ष" विषय पर आधारित एक सैद्धांतिक, ऐतिहासिक तथा विमर्शात्मक शोध है। इस शोध का उद्देश्य भारतीय ज्ञान परंपरा में निहित जातिआधारित - वैचारिक संरचनाओं तथा दलित मुक्ति आंदोलन द्वारा प्रस्तुत वैकल्पिक ज्ञान दृष्टि के बीच संबंध और संघर्ष का संग्रह नहीं-विश्लेषण करना है। अतः इस अध्ययन में मात्र तथ्य, बल्कि विचारधारात्मक विवेचन और आलोचनात्मक व्याख्या को प्राथमिकता दी गई है। इस शोध में गुणात्मक शोध पद्धति को अपनाया गया है, क्योंकि विषय सामाजिक, वैचारिक और ऐतिहासिक प्रकृति का है। भारतीय ज्ञान परंपरा और दलित चिंतन को संख्यात्मक आँकड़ों के बजाय ग्रंथों, विचारों, विमर्शों और ऐतिहासिक अनुभवों के माध्यम से समझा गया है। इसलिए इस अध्ययन में विचारधारात्मक विश्लेषण, पाठविश्लेषण और तुलनात्मक अध्ययन को मुख्य उपकरण - के रूप में प्रयोग किया गया है।

प्राथमिक स्रोतों के रूप में डॉ) भीमराव आंबेडकर की रचनाएँ .Annihilation of Caste, The Buddha and His Dhamma, Writings and Speeches), ज्योतिबा फुले की गुलामगिरी, बुद्ध के उपदेश, भक्ति परंपरा के संत कबीर और रैदास की वाणी तथा दलित आत्मकथाएँ और साहित्य को लिया गया है। इन ग्रंथों को दलित दृष्टि से पढ़ते हुए यह समझने का प्रयास किया गया है कि वे भारतीय ज्ञान परंपरा को कैसे चुनौती देते हैं और किस प्रकार एक वैकल्पिक ज्ञान प्रणाली निर्मित करते हैं।

द्वितीयक स्रोतों के रूप में गैल ऑम्वेट, शरणकुमार लिंबाले, विवेक कुमार, कांचा इलैया, रामविलास शर्मा आदि विद्वानों की कृतियों का उपयोग किया गया है। इन स्रोतों के माध्यम से जाति, ज्ञान और सत्ता के आपसी संबंधों को समझने में सहायता मिली है।

इस अध्ययन में विमर्श विश्लेषण की पद्धति का भी प्रयोग किया गया है। इसके अंतर्गत ब्राह्मणवादी ग्रंथों में निहित जातिकेन्द्रित विमर्श-आधारित ज्ञान संरचना तथा दलित साहित्य और चिंतन में विकसित मुक्ति- की तुलना की गई है। यह देखा गया है कि किस प्रकार ज्ञान, धर्म और परंपरा के नाम पर असमानता को वैध बनाया गया और दलित चिंतन ने उसका प्रतिवाद कैसे किया। साथ ही ऐतिहासिकविश्लेषणात्मक पद्धति के माध्यम से यह - समझने का प्रयास किया गया है कि विभिन्न कालखंडों में भारतीय ज्ञान परंपरा और दलित प्रतिरोध किस प्रकार विकसित हुए। बुद्धकाल से लेकर आधुनिक दलित आंदोलन तक की विचारधारात्मक निरंतरता और परिवर्तन का अध्ययन इस शोध का महत्वपूर्ण अंग है।

इस प्रकार यह शोध प्रविधि बहुस्तरीय है, जिसमें ऐतिहासिक अध्ययन, पाठ विश्लेषण, तुलनात्मक विवेचन और विमर्शात्मक दृष्टि का समन्वय किया गया है, जिससे भारतीय ज्ञान परंपरा और दलित मुक्ति के वैचारिक संघर्ष को समग्र रूप में समझा जा सके।

भारतीय ज्ञान परंपरा की संरचना को यदि ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो यह स्पष्ट होता है कि ज्ञान, धर्म और सामाजिक सत्ता एकदूसरे से गहराई से जुड़े रहे हैं। वैदिक और ब्राह्मणिक ग्रंथों में ज्ञान को मोक्ष और -सामाजिक श्रेष्ठता का साधन माना गया, परंतु यह ज्ञान सभी के लिए सुलभ नहीं था। मनुस्मृति में शूद्रों को शिक्षा और वेदाध्ययन से वंचित कर दिया गया 10 मनुस्मृति).121; 4.99), जिससे समाज में ज्ञान का एकाधिकार स्थापित हुआ। आंबेडकर ने इस व्यवस्था को "graded inequality" कहा और लिखा कि "हिंदू समाज की संरचना में प्रत्येक जाति किसी से श्रेष्ठ और किसी से हीन मानी जाती है"[viii] । इस ज्ञानसत्ता संरचना ने दलितों को -केवल श्रम करने वाला वर्ग बना दिया और उनके बौद्धिक अस्तित्व को नकार दिया।

संरचना के विरुद्ध एक ऐतिहासिक मोड़ था। बुद्ध ने जन्म के -बुद्ध का उदय इस ब्राह्मणवादी ज्ञान आधार पर श्रेष्ठता को अस्वीकार करते हुए कर्म और करुणा को मनुष्य का मूल्य बताया। आंबेडकर ने बुद्ध धर्म को"ज्ञान के लोकतंत्रीकरण का आंदोलन" कहा आंबेडकर), 1957, p. 68)। यह परंपरा भक्ति आंदोलन में और अधिक सशक्त हुई, जहाँ कबीर, रैदास और नामदेव जैसे संतों ने जाति और पवित्रता की अवधारणा को चुनौती दी। रैदास का कथन "जाति न पूछो साधु की" केवल आध्यात्मिक नहीं बल्कि एक सामाजिकज्ञानात्मक विद्रोह -था।

ज्योतिबा फुले ने ब्राह्मणवादी इतिहास और ज्ञान परंपरा की वैज्ञानिक आलोचना की। उन्होंने कहा कि तथाकथित आर्य संस्कृति शूद्रों और अतिशूद्रों की दासता पर आधारित थी और शिक्षा पर ब्राह्मणों का एकाधिकार फुले) सामाजिक गुलामी का मूल कारण था, 1873, p. 23)। फुले ने बहुजन समाज के लिए एक वैकल्पिक इतिहास और ज्ञान दृष्टि प्रस्तुत की, जो श्रम, उत्पादन और सामाजिक यथार्थ पर आधारित थी। इसी परंपरा को आगे बढ़ाते हुए आंबेडकर ने हिंदू धर्मग्रंथों को सामाजिक असमानता का वैचारिक आधार बताया आंबेडकर), 1987, Vol. 1, p. 312)।

आधुनिक काल में दलित साहित्य, आत्मकथाएँ और सांस्कृतिक आंदोलन इसी वैकल्पिक ज्ञान परंपरा के विस्तार हैं। शरणकुमार लिंबाले ने दलित साहित्य को "ब्राह्मणवादी ज्ञान व्यवस्था के विरुद्ध प्रतिरोधी ज्ञान प्रणाली" कहा है लिंबाले), 2004, p. 98)। दलित आत्मकथाएँ, जैसे ओमप्रकाश वाल्मीकि की जूठन या शरणकुमार लिंबाले की अक्करमाशी, दलित जीवन के अनुभवों को इतिहास और ज्ञान के केंद्र में लाती हैं, जो परंपरागत भारतीय ज्ञान संरचना में अनुपस्थित रहे हैं।

गैल ऑम्वेट ने यह स्पष्ट किया है कि ब्राह्मणवादी ज्ञान प्रणालियों ने श्रमिक और उत्पादक वर्गों को बौद्धिक वैधता से वंचित किया)Omvedt, 2003, p. 112)। दलित आंदोलन इस वर्चस्व को तोड़ते हुए ज्ञान को लोकतांत्रिक बनाने का प्रयास करता है। यह संघर्ष केवल आरक्षण या अधिकारों का नहीं, बल्कि यह तय करने का भी है कि भारत की बौद्धिक विरासत किसकी है।

समकालीन भारत में जब"भारतीय ज्ञान परंपरा" के पुनरुत्थान की बात होती है, तब यह प्रश्न और अधिक प्रासंगिक हो जाता है कि क्या यह परंपरा दलित और बहुजन समाज के अनुभवों को भी स्थान देगी या नहीं। यदि भारतीय ज्ञान परंपरा में केवल वेद, उपनिषद और ब्राह्मणिक ग्रंथ ही केंद्र में रहेंगे, तो वह पुनः उसी वर्चस्ववादी ढांचे को दोहराएगी। सच्ची भारतीय ज्ञान परंपरा वही होगी जो बुद्ध, फुले, आंबेडकर और दलित साहित्य की समावेशी और न्यायआधारित दृष्टि को अपनाए।-

निष्कर्ष - प्रस्तुत अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा और दलित मुक्ति का संबंध केवल संवाद या विरोध का नहीं, बल्कि गहरे वैचारिक संघर्ष और पुनर्निर्माण की प्रक्रिया का है। भारतीय ज्ञान परंपरा के एक बड़े हिस्से ने ऐतिहासिक रूप से जातिआधारित सामाजिक व्यवस्था को वैधता प्रदान की-, जिससे ज्ञान, शिक्षा और सांस्कृतिक अधिकार कुछ विशेष वर्गों तक सीमित हो गए। मनुस्मृति, धर्मशास्त्रों और ब्राह्मणवादी व्याख्याओं ने शूद्रों और दलितों को बौद्धिक और सामाजिक रूप से हाशिये पर डाल दिया, जिससे असमानता एक स्थायी सामाजिक संरचना बन गई। इसके विरुद्ध दलित चिंतन और आंदोलन ने ज्ञान की वैकल्पिक परंपरा विकसित की, जो समानता, मानव गरिमा और सामाजिक न्याय पर आधारित है। बुद्ध, कबीर, रैदास, फुले और डॉआंबेडकर जैसे चिंतकों ने यह स्पष्ट किया कि सच्चा ज्ञान वह है जो मनुष्य को स्वतंत्र बनाता है ., न कि उसे जन्म के आधार पर बाँधता है। दलित साहित्य, आत्मकथाएँ और सांस्कृतिक आंदोलन इसी ज्ञानात्मक विद्रोह का आधुनिक रूप हैं, जो ब्राह्मणवादी ज्ञानसंरचना को चुनौती देते हुए बहुजन समाज के अनुभवों को इतिहास और -विमर्श के केंद्र में लाते हैं।

यह भी स्पष्ट हुआ कि दलित मुक्ति का संघर्ष केवल राजनीतिक अधिकारों या आरक्षण तक सीमित नहीं है, बल्कि यह इस प्रश्न से जुड़ा है कि "कौन सा ज्ञान वैध है और किसकी आवाज़ को सुना जाएगा।" जब तक भारतीय ज्ञान परंपरा दलित, आदिवासी और श्रमिक समाज के अनुभवों को समान रूप से मान्यता नहीं देती, तब तक वह अधूरी और एकांगी बनी रहेगी।

अतः भारतीय ज्ञान परंपरा का सच्चा पुनरुत्थान तभी संभव है जब वह ब्राह्मणवादी वर्चस्व से मुक्त होकर एक समावेशी, लोकतांत्रिक और न्यायआधारित ज्ञान व्यवस्था में रूपांतरित हो। दलित मुक्ति का वैचारिक संघर्ष - इसी दिशा में एक ऐतिहासिक और नैतिक आवश्यकता है, जो भारत के बौद्धिक और सामाजिक भविष्य को अधिक मानवीय और समानतामूलक बनाने की क्षमता रखता है।

संदर्भ सूची-

1. Ambedkar, B. R. (1936). Annihilation of caste. Government of India Press.
2. Ambedkar, B. R. (1957). The Buddha and his dhamma. Siddharth Publications.
3. Ambedkar, B. R. (1987). Dr. Babasaheb Ambedkar: Writings and speeches (Vol. 1). Government of Maharashtra.
4. Ambedkar, B. R. (1989). Dr. Babasaheb Ambedkar: Writings and speeches (Vol. 3). Government of Maharashtra.
5. Bühler, G. (Trans.). (1886). The laws of Manu (Manusmriti). Clarendon Press.
6. Limbale, S. (2004). Towards an aesthetic of Dalit literature. Orient Blackswan.
7. Omvedt, G. (2003). Buddhism in India: Challenging Brahmanism and caste. Sage.
8. Phule, J. (1873/2002). Gulamgiri. Satyashodhak Samaj Prakashan.

[i] (Ambedkar, Writings and Speeches, Vol. 3, p. 215)
[ii] Ambedkar (1936) described Hindu society as a system of "graded inequality" (p. 47
[iii] According to Omvedt (2003), Brahmanical knowledge systems excluded productive classes from intellectual legitimacy (p. 112).
[iv] Ambedkar (1957) saw Buddhism as a revolt against priestly monopoly of knowledge (p. 68).
[v] Phule, J. (1873/2002). Gulamgiri. Satyashodhak Samaj Prakashan. p. 23
[vi] Ambedkar, B. R. (1987). Dr. Babasaheb Ambedkar: Writings and speeches (Vol. 1). Government of Maharashtra. Vol. 1, p. 312
[vii] Limbale (2004) argued that Dalit literature functions as a counter-knowledge system (p. 98)
[viii] Ambedkar, 1936, p. 47